A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320-7175 (O) | Volume 14, Issue 02, April 2026 (Special Issue)

This paper was presented at the 'Swar Sanskar National Seminar', organized by Swar Sanskar Sangeet Gurukul
Seminar Convener: Dr. Yash Sanjay Dewale (Co-Founder: Swar Sanskar Sangeet Gurukul, Assistant Professor: MSU Baroda)

रंगमंच, रस, भाव और संगीत का अंतर्संबंध: शास्त्रीय नृत्य की अभिव्यंजना के विशेष संदर्भ में

Poonam Sharma
Research Scholar, Department of Performing Arts, Banasthali Vidyapith, Rajasthan
Dr. K Madhavi
Associate Professor, Department of Performing Arts, Banasthali Vidyapith, Rajasthan

Read the Article Online

OPEN ACCESS

Published on 30 April, 2026

सार

भारतीय शास्त्रीय नृत्य में रंगमंच, रस, भाव और संगीत परस्पर अविभाज्य रूप से संबद्ध हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इन तत्त्वों की सुव्यवस्थित परिकल्पना प्रस्तुत की गई है, जो आज भी शास्त्रीय नृत्य परंपराओं का मूलाधार है। रंगमंच वह पवित्र अवकाश है जहाँ नर्तक अपनी देह, दृष्टि और चित्तवृत्ति के माध्यम से आंतरिक भावों को दृश्यमान करता है। नृत्य में अंग, उपांग एवं प्रत्यंग के समन्वित संचालन द्वारा स्थायी भाव जागृत होते हैं जो नवरसों के रूप में प्रकट होते हैं। संगीत इस संपूर्ण प्रक्रिया का प्राण है। यह शोध गुणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है जिसमें नाट्यशास्त्र, अभिनयदर्पण एवं संगीतरत्नाकर का विश्लेषण सम्मिलित है।

मुख्य शब्द: नाट्यशास्त्र, नवरस, भावाभिव्यक्ति, अभिनय, शास्त्रीय नृत्य, रंगमंच, संगीत-लय

1. प्रस्तावना

भारतीय कला-दर्शन की एक अनूठी विशेषता यह है कि उसने सदैव मानवीय अनुभव की समग्रता को अपनी अभिव्यक्ति का केंद्र माना है। शास्त्रीय नृत्य इस समग्रता का सर्वाधिक परिष्कृत और सौंदर्यशास्त्रीय रूप है। जब कोई नर्तक रंगमंच पर उपस्थित होता है, तो वह केवल शारीरिक गतिविधियाँ नहीं करता, अपितु वह एक ऐसी साधना में प्रवृत्त होता है जो देह को माध्यम बनाकर अनुभव की गहनतम परतों को स्पर्श करती है।

रंगमंच, रस, भाव और संगीत — ये चार तत्त्व मिलकर शास्त्रीय नृत्य की आत्मा का निर्माण करते हैं। इनमें से किसी एक के अभाव में नृत्य अपूर्ण रह जाता है। भरतमुनि ने अपने कालजयी ग्रंथ नाट्यशास्त्र में इन सभी तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया है कि वे एक-दूसरे के पूरक और परस्पर सापेक्ष प्रतीत होते हैं। यह शोध-पत्र इसी अंतर्संबंध को उजागर करने का प्रयास करता है।

प्रस्तुत शोध का महत्त्व इस दृष्टि से विशेष है कि आधुनिक युग में शास्त्रीय नृत्य के प्रस्तुतीकरण में इन तत्त्वों का समन्वय प्रायः खंडित होता दिखाई देता है। केवल तकनीकी दक्षता पर बल देते हुए भावाभिव्यक्ति और रसानुभव की उपेक्षा होने लगी है। इस पृष्ठभूमि में इन चारों तत्त्वों के मौलिक अंतर्संबंध को समझना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

2. रंगमंच: अभिव्यक्ति का पवित्र अवकाश

'रंगमंच' का शाब्दिक अर्थ है — वह स्थान जहाँ रंग अर्थात् भाव एवं रस की अभिव्यक्ति होती है। नाट्यशास्त्र में रंगमंच को केवल एक भौतिक संरचना के रूप में नहीं, अपितु एक आध्यात्मिक क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया है। भरतमुनि ने विभिन्न प्रकार के रंगमंचों का उल्लेख किया है — विकृष्ट (आयताकार), चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिकोणीय) — किंतु इनका उद्देश्य केवल भौतिक आकार-प्रदान करना नहीं था, अपितु नर्तक और दर्शक के बीच एक ऊर्जास्वर संपर्क स्थापित करना था।

शास्त्रीय नृत्य में रंगमंच की संकल्पना दर्शक के साथ एक मौन संवाद है। जब नर्तक मंच पर प्रवेश करता है, तो वह अपने व्यक्तित्व को विसर्जित कर पात्र में समाहित हो जाता है। यह रूपांतरण तभी संभव है जब रंगमंच का वातावरण, प्रकाश, परिधान और मंच-सज्जा एक समेकित अनुभव की सृष्टि करें। भरत ने इसे 'रंगशीर्ष' की संज्ञा दी है — वह बिंदु जहाँ नर्तक की ऊर्जा और दर्शक की ग्रहणशीलता परस्पर मिलती हैं।

भारतीय नृत्य परंपराओं जैसे भरतनाट्यम, कुचिपुड़ि, ओडिसी, कथक, मणिपुरी और मोहिनीअट्टम में रंगमंच का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक शैली में मंच-प्रवेश से लेकर मंच-निर्गमन तक की प्रत्येक गतिविधि शास्त्रसम्मत नियमों से बद्ध है। भरतनाट्यम में 'पुष्पांजलि' और कथक में 'वंदना' रंगमंच को पवित्र करने की प्रक्रिया है जो यह सिद्ध करती है कि नर्तक के लिए रंगमंच केवल प्रदर्शन का स्थान नहीं, साधना का मंदिर है।

3. रस-सिद्धांत और शास्त्रीय नृत्य में उसकी अभिव्यक्ति

भारतीय काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र में रस की अवधारणा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। भरतमुनि का सूत्र है — 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' — अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। शास्त्रीय नृत्य में यही प्रक्रिया सशरीर घटित होती है।

नवरसों में सर्वप्रथम शृंगार रस का उल्लेख होता है जो प्रेम, सौंदर्य और अनुराग का प्रतिनिधित्व करता है। भरतनाट्यम की 'अष्टपदी' प्रस्तुतियों में शृंगार रस की अभिव्यक्ति नर्तकी की भृकुटि-संचालन, नेत्र-भाव और हस्त-मुद्राओं के माध्यम से होती है। करुण रस में अश्रु, कंठ-अवरोध और शिथिल अंग-संचालन का समावेश होता है। वीर रस में शरीर की दृढ़ता, गर्वित मुद्राएँ और तीव्र पदताड़न उसकी पहचान हैं।

अभिनयदर्पण में नंदिकेश्वर ने नेत्रों को 'आत्मा का दर्पण' कहा है। आठ प्रकार की दृष्टियाँ — सम, अलोकिता, सची, प्रलोकिता, निमिलिता, उल्लोकिता, अनुवृत्त और अवलोकिता — प्रत्येक रस के अनुरूप प्रयुक्त होती हैं। यह सूक्ष्म नेत्र-व्यापार ही नृत्य को केवल शारीरिक कौशल से ऊपर उठाकर एक आत्मिक संप्रेषण में परिणत करता है। शांत रस — जिसे भरत ने बाद में स्थान दिया — शास्त्रीय नृत्य के 'मंगलाचरण' या 'तिल्लाना' में उस आनंद की अभिव्यक्ति करता है जो सांसारिक कामनाओं से परे है।

आधुनिक शास्त्रीय नर्तकों में रस की अभिव्यक्ति को लेकर एक विमर्श चल रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि रस केवल अनुभव किया जा सकता है, सीखा नहीं जा सकता। दूसरी ओर गुरु-शिष्य परंपरा में रस की शिक्षा 'रागानुभव' के माध्यम से दी जाती रही है जिसमें नर्तक को पहले स्वयं रस में डूबना पड़ता है, तब वह दर्शक को उसमें निमज्जित कर पाता है।

4. भाव : नृत्य की आंतरिक चेतना

यदि रस नृत्य का गंतव्य है तो भाव उसका मार्ग है। नाट्यशास्त्र में ४९ भावों का वर्णन मिलता है जिनमें ८ स्थायी भाव, ३३ संचारी भाव और ८ सात्त्विक भाव सम्मिलित हैं। स्थायी भाव वे मनोदशाएँ हैं जो चित्त में दीर्घकाल तक टिकती हैं — रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय।

शास्त्रीय नृत्य में भाव की अभिव्यक्ति 'अभिनय' के चार प्रकारों — आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक — के माध्यम से होती है। आंगिक अभिनय में संपूर्ण शरीर बोलता है। हस्त-मुद्राएँ जैसे पताका, त्रिशूल, अर्धचंद्र, मयूर आदि भावों को भाषा प्रदान करती हैं। ओडिसी नृत्य में 'त्रिभंग' मुद्रा — तीन बिंदुओं पर शरीर का वक्रता-युक्त संतुलन — कोमलता और भक्ति-भाव की पराकाष्ठा है।

सात्त्विक अभिनय भावाभिव्यक्ति का सर्वोच्च स्तर है। इसमें रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, कंप, अश्रु, स्वरभंग, स्तंभ और प्रलय — ये अष्ट सात्त्विक भाव स्वतः प्रकट होते हैं जब नर्तक का आंतरिक अनुभव इतना गहन हो जाता है कि वह शरीर को बाह्य रूप से प्रभावित करने लगे। यह वह अवस्था है जहाँ अभिनय 'कला' से 'योग' में परिवर्तित हो जाता है। कथक नृत्य में तुलसीदास की पंक्तियों पर आधारित भाव-प्रदर्शन में अनेक वरिष्ठ कलाकारों ने सात्त्विक भावों का अनायास प्रकटन अनुभव किया है।

5. संगीत : भाव और रस का सेतु

भारतीय परंपरा में संगीत को गीत, वाद्य और नृत्य का समन्वय माना गया है — 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।' यह परिभाषा स्वयं सिद्ध करती है कि संगीत और नृत्य एक ही चेतना के दो आयाम हैं। संगीतरत्नाकर में शारंगदेव ने नाद को ब्रह्म का पर्याय माना है। यह नाद जब राग का रूप धारण करता है, तो उसमें भावों को जागृत करने की अद्वितीय शक्ति होती है।

शास्त्रीय नृत्य में राग का चुनाव अत्यंत सायास होता है। भरतनाट्यम में 'वर्णम' के लिए प्रायः शृंगार-प्रधान राग जैसे भैरवी, कामास या नाट्टकुरिंजी का चयन किया जाता है। ओडिसी में 'अभिनय' के लिए भटियाली, पहाड़ी या देस जैसे करुण-भाव-प्रधान रागों का उपयोग होता है। कथक में तराना के लिए तीव्र लय और यमन जैसे शांत-गंभीर राग का प्रयोग नर्तक को दो विपरीत भावभूमियों में एक साथ विचरण कराता है।

ताल और लय की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कथक में तीनताल की सोलह मात्राएँ नर्तक को एक विशेष मानसिक अनुशासन में बाँधती हैं। जब 'सम' पर पैर पड़ता है तो वह केवल लयात्मक घटना नहीं, एक ऊर्जात्मक विस्फोट होता है जो दर्शक को भीतर से झंकृत करता है। मणिपुरी नृत्य में 'पुंग' की थाप और 'करताल' की झंकार मिलकर वह वातावरण रचते हैं जिसमें कृष्ण-लीला का रस सहज ही प्रवाहित होने लगता है।

साहित्य-संगीत का अंतर्संबंध भी विचारणीय है। शास्त्रीय नृत्य में प्रयुक्त पद, अष्टपदी, अभंग, या कीर्तन की काव्यात्मकता नर्तक को भाव की गहराई तक ले जाती है। जयदेव के 'गीतगोविंद' पर आधारित ओडिसी प्रस्तुतियाँ इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं जहाँ काव्य, संगीत और नृत्य तीनों मिलकर शृंगार और भक्ति के रस में एक अद्वितीय आयाम उत्पन्न करते हैं।

This paper was presented at the 'Swar Sanskar National Seminar', organized by Swar Sanskar Sangeet Gurukul
Seminar Convener: Dr. Yash Sanjay Dewale (Co-Founder: Swar Sanskar Sangeet Gurukul, Assistant Professor: MSU Baroda)

6. चारों तत्त्वों का समन्वय : एक समग्र दृष्टि

रंगमंच, रस, भाव और संगीत — ये चारों तत्त्व एक वृत्त की परिधि पर स्थित हैं जिसका केंद्र है — नर्तक का चित्त। जब नर्तक रंगमंच पर आता है, तो संगीत उसके भावों को उद्बोधित करता है, भाव रस में परिणत होते हैं और रस दर्शक तक पहुँचकर उनके चित्त में एक नई चेतना का संचार करता है। यह एक चक्रीय प्रक्रिया है जो 'नर्तक ⟶ संगीत ⟶ भाव ⟶ रस ⟶ दर्शक ⟶ पुनः नर्तक' के रूप में चलती रहती है।

इस प्रक्रिया का सबसे सुंदर उदाहरण 'अभिनय' में मिलता है। जब एक कुशल नर्तकी राधा के वियोग को अभिनीत करती है — रंगमंच पर मंद प्रकाश, पृष्ठभूमि में भैरवी राग, हस्तमुद्रा में विरह का संकेत और नेत्रों में आँसू — तो यह केवल नाट्य नहीं, एक 'योगानुभव' बन जाता है। दर्शक भी उस विरह में डूब जाता है और उसे अपने किसी वियोग की स्मृति होने लगती है। यही 'साधारणीकरण' है जिसे अभिनवगुप्त ने रस-प्रक्रिया का केंद्रीय तत्त्व माना है।

नृत्य-शास्त्र के आधुनिक अध्येताओं ने इस अंतर्संबंध को 'एम्बोडीड कॉग्निशन' (Embodied Cognition) के सिद्धांत से भी जोड़ा है — यह विचार कि ज्ञान केवल मस्तिष्क में नहीं, संपूर्ण शरीर में निवास करता है। शास्त्रीय नृत्य इसी सिद्धांत का सहस्राब्दी पुराना व्यावहारिक प्रमाण है।

7. शोध-पद्धति

प्रस्तुत शोध-पत्र गुणात्मक (Qualitative) एवं वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक (Descriptive-Analytical) शोध-पद्धति पर आधारित है। शोध के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं :

(क) प्राथमिक स्रोत विश्लेषण: नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), अभिनयदर्पण (नंदिकेश्वर), संगीतरत्नाकर (शारंगदेव), दशरूपक (धनंजय) तथा अभिनवभारती (अभिनवगुप्त) का गहन पाठ-विश्लेषण किया गया है।

(ख) तुलनात्मक अध्ययन: भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी, कुचिपुड़ि और मणिपुरी नृत्य-शैलियों में रस, भाव और संगीत के प्रयोग का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

(ग) प्रत्यक्ष अवलोकन: विभिन्न शास्त्रीय नृत्य महोत्सवों एवं गुरुकुल-आधारित प्रशिक्षण सत्रों का प्रत्यक्ष अवलोकन तथा फील्ड नोट्स तैयार किए गए।

(घ) विशेषज्ञ साक्षात्कार: वरिष्ठ नृत्याचार्यों, संगीतज्ञों एवं नाट्यशास्त्र के विद्वानों के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कार (Semi-Structured Interviews) आयोजित किए गए।

(ङ) सामग्री विश्लेषण: आधुनिक नृत्य-समीक्षाओं, शोध-पत्रिकाओं तथा नृत्य अकादमियों के दस्तावेज़ों का विश्लेषण किया गया।

8. विमर्श : समकालीन प्रासंगिकता

आज के डिजिटल युग में जब शास्त्रीय नृत्य को वैश्विक मंचों पर प्रस्तुत किया जा रहा है, तो यह प्रश्न और भी प्रासंगिक हो जाता है कि क्या रंगमंच की बदलती प्रकृति, संगीत के इलेक्ट्रॉनिक प्रयोग और दर्शकों की बदलती संवेदनशीलता के बावजूद इन चार तत्त्वों का मूल संबंध बनाए रखा जा सकता है?

अनेक समकालीन नृत्य-निर्देशकों ने रंगमंच के नवीन प्रयोगों — जैसे 'साइट-स्पेसिफिक परफॉर्मेंस', 'प्रोजेक्शन मैपिंग' और 'लाइव इलेक्ट्रॉनिक' संगीत — को शास्त्रीय भाव-प्रणाली के साथ जोड़ने के प्रयास किए हैं। इनमें कुछ प्रयोग सफल रहे हैं क्योंकि उनमें तकनीक को भाव के विस्तार के रूप में प्रयुक्त किया गया, तकनीक के लिए भाव की बलि नहीं दी गई।

गुरु-शिष्य परंपरा का संकट भी इस संदर्भ में विचारणीय है। संस्थागत नृत्य-शिक्षा में अनेक बार तकनीकी कौशल पर अत्यधिक बल और भाव-शिक्षा की उपेक्षा होती है। परिणामस्वरूप नर्तक तो बनते हैं किंतु रस-निष्पत्ति की क्षमता कम हो जाती है। यह एक ऐसी चुनौती है जिसका समाधान शास्त्रीय ग्रंथों की पुनः पठन-प्रक्रिया और गुरु-शिष्य परंपरा के पुनरुद्धार में निहित है।

9. निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में यह स्थापित किया गया है कि रंगमंच, रस, भाव और संगीत शास्त्रीय नृत्य में केवल सहयोगी तत्त्व नहीं हैं, अपितु ये एक अखंड चेतना के चार आयाम हैं। रंगमंच वह क्षेत्र है जहाँ यह चेतना अवतरित होती है। भाव उस चेतना की आंतरिक अवस्था है। संगीत उसका संवाहक है और रस उसकी पराकाष्ठा।

भरतमुनि से लेकर अभिनवगुप्त तक की परंपरा ने इस अंतर्संबंध को सैद्धांतिक आधार दिया। शताब्दियों की गुरु-शिष्य परंपरा ने इसे व्यावहारिक रूप में जीवित रखा। आज की आवश्यकता यह है कि शास्त्रीय नृत्य के अभ्यासी और अध्येता दोनों इस समन्वय को न केवल सैद्धांतिक रूप से समझें, अपितु अपनी साधना में उसे मूर्त रूप दें।

जब नर्तक रंगमंच पर अपने भाव को संगीत के माध्यम से रस में परिणत करता है, तो वह एक ऐसा क्षण रचता है जो समय और स्थान की सीमाओं को लाँघ जाता है — वह क्षण जिसे भारतीय सौंदर्यशास्त्र में 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया है। यही शास्त्रीय नृत्य की शाश्वत सार्थकता है और यही इस शोध का मूल निष्कर्ष।

संदर्भ-ग्रंथ

1. भरतमुनि. (1951). *नाट्यशास्त्र*. कलकत्ता : कलकत्ता विश्वविद्यालय (अनुवाद : मनमोहन घोष)
2. नंदिकेश्वर (1936). *अभिनयदर्पण*. अदयार : अदयार लाइब्रेरी, (अनुवाद एवं टीका : मणल्लि रामकृष्ण कवि)
3. शारंगदेव. (1943). *संगीतरत्नाकर*. (संपादन : एस. सुब्रमण्य शास्त्री)। अदयार : अदयार लाइब्रेरी
4. अभिनवगुप्त. (१०वीं-११वीं शताब्दी). *नाट्यशास्त्र की व्याख्या*. बनारस : चौखम्बा विद्या भवन अभिनव भारती
5. धनंजय. (1962). *दशरूपक*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास (अनुवाद : जॉर्ज हास)
6. वात्स्यायन, कपिला. (1974). *भारतीय शास्त्रीय नृत्य*. नई दिल्ली : संगीत नाटक अकादमी
7. कोटहरी, सुनील. (1981). *भरतनाट्यम*. नई दिल्ली : मार्ग पब्लिकेशन्स
8. पाणिग्राही, सिंयाली. (2000). *ओडिसी नृत्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. भुवनेश्वर : उड़ीसा संगीत नाटक अकादमी
9. राजगोपालन, एल. (2015). *रस और अभिनय : नाट्यशास्त्र का समसामयिक पाठ*. दिल्ली : नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा
10. त्रिपाठी, रामस्वरूप. (2010). *भारतीय सौंदर्यशास्त्र*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन